थमते-थमते साँझ हुई

हुश्न तवस्सुम निहाँ

थमते-थमते साँझ हुई

'हाय... हाय... निगोड़ो... भड़ुओ... कहाँ मर गए... सब के सब साँझ उतर आई है और अभी तक सब अपना... जनाजा पीट रहे हो... देखो... ,नीचे जा कर गजरेवाली आई... या नहीं, मोंगरे के ही लेना... रज्जन... ओ... रज्जन... मिठाईवाले के वहाँ लड़का भेजा या नहीं। थोड़े से फल भी मँगवा लेना... हाय... हाय... सब नासपीटियाँ अभी तक सोई

https://www.hindiadda.com/thamate-thamate-saanjh-huee/

पड़ी हैं... । उठो... कमबख्तो... कस्टमर आते ही होंगे... । ओ... हो... ये लाइट क्यूँ गुल है... कमरुद्दीन... ओ कमरुद्दीन... '

महलनुमा बनी इस कोठी के निचले दालान में कदम रखते ही रणबीर बाबू के कानों में ये लफ्ज कौंधते चले गए। ऐसा लगा जैसे किसी बारात की अगुवाई की तैयारी चल रही हो, कोठी भी सज-धज में किसी दुल्हन से कम नहीं मालूम पड़ती थी। अनुभवहीनता के कारण उन्हें ये सब बड़ा अजीब और जी घिनानेवाला लगा।

वह वहीं खड़े ऊपरी इमारतों की भीतरी चकाचौंध और खनक को समझने का प्रयास करते रहे। उन बेहया शब्दों को भीतर ही भीतर दुहराते हुए वे कोई अन्य आशय निकालने का प्रयत्न करते रहे। पर नहीं... कोठों की दुनिया से निकलती हुई आवाजों का अर्थ ही अलहदा होता है। यही सोच रहे थे शायद वह। तभी सामने से एक कारिंदा गुजरा जो झपटा हुआ ऊपर ही जाना चाह रहा था। जिसकी बदरुद्दीन के नाम से पुकार हो चुकी थी। रणवीर बाबू ने लपक कर उसका हाथ पकड़ लिया।

'सुनो... ! कंचन बाई से मिलना है... ' उसने घूर कर देखा।

'तुमको नहीं पता, सात बजे खुलता है कोठा... दो घंटे बाद आना।'

और हाथ झिकट कर आगे बढ़ गया। रणवीर बाबू हारे से उसे देखते रह गए। पर हिम्मत नहीं हारी। अपने लंबे घुँघराले बालों पर हाथ फेरा, झोले में हाथ डाला। फिर खाली ही निकाल लिया। और कुर्ते की जेब में कुछ तलाशने लगे। फिर एक बार झोले में हाथ डाला और कैमरा निकाला, आँखों से सटा कर सेट करने लगे। एक पुरानी नक्काशी पर उनका ध्यान गया, कुछ रंगीन पर्दे व कुमकुमे भी दिखाई पड़ रहे थे। उनका ध्यान उसी पर टिक गया और उसे लक्ष्य करने लगे कि एक ओर से झन्नाटेदार आवाज उन्हें भेद गई।

'हाय... हाय... ये किसके मुँह में दाँत निकल आए कि मेरी ड्योढ़ी की फोटो ले रहा है। लल्लन... , कल्लू ... s... s... s... झब्बू... s... s... s... जरा देखना इस लुच्चे को... इसे इसके कैमरे के साथ ही चौखट पे दफन तो कर दो... '

सुनते ही रणवीर बाबू के हाथ-पाँव फूल गए। जल्दी से कैमरा झोले में वापस रख हाथ जोड़े हुए पीछे मुड़े, जिधर से आवाज आई थी। उन्हें बिल्कुल उम्मीद ना थी कि मानसून यूँ बिगड़ सकता है। किंतु अब तक वह खिड़की से हट चुकी थी कि तभी सामने दो काले-कलूटे लट्ठबाज आ खड़े हुए। रणवीर बाबू भीतर ही भीतर सिहरे जा

रहे थे। उनके हाथ अब भी जुड़े हुए थे। जमीन घूमती सी नजर आई। वह उन दोनों से मुखातिब हुए 'देखिए भाई साहब, मैं अखबार नबीस हूँ। आपकी मालकिन कंचन बाई से कुछ सवाल करने आया हूँ... '

'हुं... ह... सवाल करने आया है... धक्के दे कर बाहर करो... '

एक ने मुँह बिचकाते हुए कहा तो दूसरे ने थोड़ी समझदारी दिखाई - 'नहीं... नहीं... वहाँ बता देते हैं... '

दोनों ने एक-दूसरे को अर्थपूर्ण निगाहों से देखा फिर भीतर चले गए।

रणवीर जी की साँसें अब जा के संभली थीं। उम्र के साठवें बरस में चल रहे रणवीर बाबू को ऐसा दिल दहलानेवाला अनुभव पहली बार हुआ था। चेहरे पे छलक आई पसीने की बूंदों को वह रूमाल से पोंछने लगे तभी भीतर सीढ़ियों से उतरता हुए एक लड़का सामने आया। बोला 'आइए मेरे साथ... '

वह पीछे चल दिए। लड़का उन्ही सीढ़ियों से उन्हें ऊपर ले गया और फिर ऊपर बने एक बड़े से हॉलनुमा कमरे में बैठा दिया। फिर चला गया। कुछ क्षण बाद वही लड़का आया और रणवीर बाबू के सामने एक झीना पर्दा खींच गया जो बारीक होते हुए भी पारदर्शी नहीं था। वह कशमकश में बैठे कमरे की रौनक निहार रहे थे।

अंतस में अजब सी उथल-पुथल मची थी। कुछ देर बाद पर्दे के उस पार एक परछाई दिखी। वह धीमे से चल कर उन्हीं के सामने उस तरफ पड़ी कुर्सी पर बैठ गई। वह उनकी तरफ से थोड़ी तिरछी हो कर बैठी थी। तत्क्षण एक सधा सा स्वर लहराया 'हाँ जी, पूछिए, मगर जो पूछिए, जल्दी-जल्दी। ... वक्त कम है... '

अजब पशोपेश में थीं उनकी निगाहें। आँखों ही आँखों में उस परछाईं के अस्तित्व को टटोल रहे थे। विश्वास करने की कोशिश कर रहे थे कि यह वहीशख्सियत है, जिसका शोर-शराबा कुछ देर पहले कोठी को खाए जा रहा था। एक दम मिठास कैसे भर गई इस आवाज में सोचते-सोचते उनका अंतस फूट पड़ा, 'कंचन जी, सबसे पहले मुझे इस हिजाब का मतलब बता दीजिए'

'हम लोग अपने कस्टमर से या फिर इमरजेंसी में ही दूसरों का सामना करते हैं। फालतू लोगों का नहीं... '

'ओह... हाँ... , मेरी हैसियत तो वैसे भी आप पहले ही बता चुकी हैं।...

खैर... कंचन जी, मैं आप जैसी शोषित महिलाओं जो कोठों का नर्क भुगत रही हैं उनकी पीड़ा, उनका दर्द समाज के सामने रखना चाहता हूँ... आप लोगों की पीड़ा तो बड़ी विचित्रा है। होठों पर नगमें, आँखों में आँसू... '

'सो तो है, मगर दुनिया से कहने की कोई जरूरत नहीं बाबू जी, इस दुनिया ने हमें फूल दिए या अंगारे, हम कुबूल कर जदा हैं। हमें किसी से कोई शिकवा नहीं। किसी की सफाई नहीं चाहिए, हम संतुष्ट हैं... '

कंचन बाई के शब्दों में जितनी आर्द्रता थी उतना ही स्वाभिमान। रणवीर बाबू के भीतर अजीब सी टीस दौड़ गई। वह आगे बोलीं, '... मैं तो जानती हूँ दुनिया की सारी औरतों की हालत एक जैसी है। चाहे वे घरवाली हो या कोठोंवाली। ये हो चाहे वो, दोनों ही अपनी देह की ही कमाई खाती हैं।

रणवीर बाबू का अंतस एक बार फिर किसी चकाचौंध से भर गया। जी चाहा खुली सहमति में 'वाह।' कह दें। पर भीतर के पुरुष दंभ ने टप से मुँह पर हथेली रख दी। शब्दों की इन सत्तायगी को एक ओर झिड़क कर कंचन बाई के अतीत को धीरे से कुरेदा 'कंचन जी, यहाँ तक पहुँचने के सफर ने आपको कितना आहत किया... ?

'असल में बाबू जी, मेरे लहूलुहान कदम ही मुझे यहाँ तक लाए।'

लगा वह जवाब लिए हुए तैयार बैठी थीं। टप से बोलीं, '... बकिया, कितना आहत होने का सवाल है तो इसे लफ्जों में उतारना मुश्किल है... ' इत्ते लफ्जों को कंचन बाई ने काफी गहरे में उतरते हुए धीमे-धीमे कहा।

'आपका अतीत... ?'

'अतीत... ?' लगा वह गिर कर चकनाचूर हो जाएगी। उनकी आंतरिक सिहरन रणवीर बाबू ने भी महसूस की थी। कुछ देर सन्नाटा पसरा रहा,फिर अचानक कंचन बाई अतीत की खाई में गडमड होने लगीं

शहर की मुंडेर से लगा हुआ गाँवनुमा पुरवा में कंचन अपनी देहरी में बूढ़े माँ-पिता के साथ रहती थी। पिता ने घोर मेहनत-मशक्कत और मजदूरी कर उसे पढ़ाया-लिखाया था। माँ-पिता की इकलौती संतान। दैहिक रूप-लावण्य की धनी तो थी ही। पढ़ी-लिखी होने के कारण गाँव में सबकी भली भी थी और आदर-सम्मान भी पर्याप्त मिलता था। आए दिन कोई ना कोई गाँववाला दवा का पर्चा पढ़वाने या चिट्ठी पढ़वाने-लिखवाने

आता रहता था। वह हँसते-हँसते सबके काम बना देती। पिता आए रोज बीमार रहते। ग्यारहवीं पास करते-करते वह साथ छोड़ गए।

अब माँ ने बाहर निकलना शुरू किया था। आखिर कंचन को ऊँची पढ़ाई पढ़ा कर अपने पति का सपना तो पूरा करना ही था। कभी माँ की हिम्मत डगमगाती तो पिता की आत्मा की छुवन उन्हें सँभाल जाती। पति का वाहिद सपना अब उनके जिम्मे था। उन्होंने जी तोड़ मेहनत का संकल्प लिया। किया भी वैसा। कतु जान तोड़ मेहनत के कारण उनकी जान पे बन आई थी। बीमार रहने लगीं। काम भी छूट गया। तब जमींदार के वहाँ उसने बच्चों को ट्यूशन पढ़ाने की नौकरी कर ली।

जमींदारनी व जमीदार अच्छी कैफियत रखते थे। जमीदारों की बनिस्बत बेहद सीधे-सरल। वर्ना जमीदारों की क्रूरता तो दुनिया भर में मशहूर है।

शेखू उन्हीं के वहाँ मुनीमी करता था। मजबूत कद-काठी, लंबा साँवला सा, कुछ-कुछ शहरी छाप से 'मोआ' सा व्यक्तित्व। स्वभाव से मृदुभाषी और बेहद सरल, बुद्धि प्रखर।

कंचन का सौम्य छरहरा व्यक्तित्व, गेंहुआ, गोल चेहरा स्वभाव से धीर-गंभीर और बेहद सजग। कंचन के यही सब ने शेखू को मोह लिया। आते-जाते प्रायः उनकी दुआ-सलाम होती रहती। फिर धीरे-धीरे एक-दूसरे पर उनकी निंगाहें उठने लगीं। और उठती गईं... उठती गईं... उठती ही गईं... ।

शेखू, यानि शिखर, कंचन के गाँव के मास्टर जी का बेटा था। दो बेटियों पर तीसरा बेटा। मास्टर जी अक्सर विद्यालय के काम से शहर जाते रहते थे। किसी बार उनकी पदोन्नति की बात चली। मगर पदोन्नति का रास्ता थोड़ा टेढ़ा था। उन्हें ऊपरवालों को खुश करने के लिए उन्हें किसी कोठेवाली का बंदोबस्त करना पड़ा था। लोग खुश हो गए। पदोन्नति हो गई। वह रातों-रात हेडमास्टर बन गए। अब कहाँ जमीन पर पाँव? उन्हें नीले-पीले सपने सूझने लगे। जब उन्होंने अधिकारियों को खुश किया था तो भीतर-भीतर हाथ मल कर रह गए थे। पर तय किया था 'हो ना हो, पदोन्नति गर हुई तो एक बार उस सतरंगी दुनिया को टेस्ट तो करूँगा जरूर ... ।'

वेतन पाते ही पहुँच गए कोठे पर। और फिर वहीं के हो कर रह गए।

विद्यालय के कार्य के बहाने प्रायः वह शहर हो लेते, और इस तरह वे बेतरह लुटते गए। परिवार सड़क पर आ गया। किसी गुलाब बाई से उनका ऐसा मोह जुड़ा कि उसी

के कदमों की धूल बन कर रह गए। गनीमत ये कि शेखू की माँ भी अध्यापिका थीं। वह पति को बिसार कर बच्चों की परवारिश में जुट गईं। समय आने पर दोनों बेटियों की शादी भी कर दी। पर ब्याह के बाद ही वह चल बसीं।

अब शेखू बचा था, अपनी चहार दीवारी ढोने के लिए।

किसी रोज गाँव के निकट ही बहती सरयू के तट पर बैठे दोनों यहाँ-वहाँ की ओट रहे थे कि कंचन ने चुहल की 'अच्छा शेखू, तुम्हें स्त्री के किस रूप से अधिक मोह है और किससे घृणा।... ?'

'ये तो ठीक-ठीक कह पाना कठिन है कंचो, कि मुझे स्त्री के किस रूप से मोह होना चाहिए और किससे घृणा क्योंकि एक औरत ने अगर हमारा घर उजाड़ा है तो दूसरी स्त्री ने माँ के रूप में हमारा जीवन सहेजा... संवारा... और जीवन भर संघर्ष किया हमारे लिए... ' कहते-कहते कहीं डूब गया वह।

'यानि की तुम सिर्फ माँ के रूप से प्रेम करते हो... शेष सभी से... ' तो वह बीच में ही तर्जनी उठा कर 'ना' में सिर हिलाते बोला था

'नहीं... नहीं... इसे यू नहीं कहना चाहिए। मुझे वास्तव में स्त्री के हर रूप से प्रेम है या मैं प्रभावित हूँ, किंतु उसके वेश्या रूप से नफरत है... जी चाहता है उसे मिट्टी की तरह रौंद डालूँ... ' कहते-कहते उसकी आँखों के डोरे लाल हो गए थे।

चेहरा भिंच गया था। भीतर-ही-भीतर बेचैन सा आकाश ताकने लगा था कि कंचो ने एक और अंगारा उछाला, 'अच्छा, कल मैं मान लो वेश्या ही हो जाऊँ तो... तब फिर... ?'

शेखू का साँवला रंग कलछऊँ मारने लगा था। उसने आँखें कस कर मींच ली। जैसे भीतर का दर्द भीतर पी जाना चाहता हो। रुँधे हुए गले से इतना ही कह पाया था।

'मैं... मैं... आत्महत्या कर लूँगा... '

'नहीं... ' एकदम चौंकती सी उसने शिखर के सिर पर हाथ रख दिया था... ' 'नहीं... नहीं... तुम्हें मेरी भी उम्र लग जाए।'

तो वह सामान्य होते हुए मुस्काया था - 'कंचो मेरी... , फाँसी पे चढ़ा के जीने की दुआ देती हो... '

'नहीं, तुम्हारे प्रेम को अमरत्व का उत्कर्ष देना चाहती हूँ... '

शेखू देर तक उसे मंत्रा मुग्ध सा निहारता रहा था।

कंचो पर बंसत झूम के आया था। नख से शिख तक वह मौसमों की लुभावनी छवि लग रही थी। आँखों में घनेरे बादल। केशों में काली घटाएँ। अधरों पर इंद्रधनुषी स्मित, चेहरे पर साँझ की लाली और चाल में झोंके बहार के। कंचो का यही सब माँ का दिल ले डूबता। एक रोज तो माँ का स्वास्थ्य काफी बिगड़ गया। कंचो उसी को लिए बैठी रही। ना जमींदार की चौखट लांघी, ना तट का ही रुख किया। शेखू छटपटा कर आखिर पाँचवें दिन घर पहुँचा गया। कंचो मैली-कुचैली गोद में माँ का सिर लिए बैठी थी। उसे देख उठ कर ओसारे में चली आई। वह निर्निमेष देख रहा था। मैली-कुचैली कंचो, सूखी-सम्भी देह। उतरा हुआ चेहरा उदासी से सना-सना। लगा कई रोज से बासी मुँह हो। सिर में बालों के सुलझे-अनसुलझे गुच्छे जैसे सिर में कब से कंघी ही ना लगाई गई हो। पूरी मरीज। शेखू को सामने देखते ही रो पड़ी। रोते हुए सारी दास्तान बकती गई। वह चुपचाप चला गया। घंटे भर बाद लौटा। कंचो को पाँच सो का नोट थमाया। माँ के सिर पर हाथ फेरा और चुप लफ्जों में उसे ढांढस बंधाकर चला आया।

पैसे हाथ में आए तो इलाज शुरू हुआ। माँ ठीक होने लगी। कंचो ने अपनी ड्यूटी सँभाल ली। लेकिन अभी तक शेखू से उसकी भेंट नहीं हो सकी थी। माँ की देख-रेख के कारण तट पर भी वह ना जा पाई थी। और जमीदार जी के वहाँ कहीं वह दिखता नहीं। भीतर ही भीतर वह शेखू की आहट तोलती रहती। चौथे रोज उसकी बेचैनी हद पार कर गई। उसने बातों -बातों में बच्चों से पूछ ही लिया - 'बंटू... तुम्हारे मुनीम चाचा नहीं दिखते... ?'

तपाक से जवाब दिया था - 'टीचर जी, मुनीम चाचा ने पाँच सौ रुपए चुराए थे। इसीलिए दादू ने उन्हें नौकरी से निकाल दिया... '

कंचो की जान काँप गई। ये क्या किया शेखू ने... । मन उबाल खाने लगा, निगाहें धुआँ-धुआँ होने लगीं, बड़ी कठिनाई से अपने आपको सँभाले बैठी रही।

अंतर में हलचल मचती रही। विचारों की शृंखला टूटती रही, जुड़ती रही। अब क्या करे वह... । शेखू ने तो उसे बचा लिया ... पर शेखू को कौन बचाए... ? बेचारा जाने कहाँ-कहाँ मुँह छिपाता फिरता हो। ... नहीं... नहीं... शेखू के दामन से ये दाग तो हटना ही चाहिए। मैं ऐसी स्वार्थी तो नहीं... आखिर वह मेरा है... मेरा... शेखू... उसका अपमान मेरा अपमान।'

उसका जी उमड़ पड़ा। वह मन ही मन कुछ निर्णय लेती बोली - 'बंटू... अपनी अम्मा को बुला लाओ... '

कुछ देर में जमींदारनी सामने थीं। उन्हें देखते ही कंचो की आँख भर आई। माँ की तबियत बिगड़ जाने का कह कर अपना वेतन अगाऊ देने का आग्रह किया। कोमल हृदया जमींदारनी ने फौरन अपने ब्लाउज में हाथ डाला। बटुआ निकाल कर पाँच सौ का नोट उसे थमा दिया और कहने लगीं -'बताओ उस्तानी जी, अगर शेखू भी इसी तरह माँग लेता तो क्या बिगड़ जाता। क्या हम आप सबकी पीड़ा नहीं समझते? पर वह नादानी कर बैठा।

जमींदार साहब ठहरे सिद्धांतवादी सच्चे इमानदार व्यक्ति। ये सब कब बर्दाश्त... ? जाने कहाँ हो बेचारा... '

अंतिम पंक्ति सुन कंचो का मन भर आया। बड़ी मशक्कत से अपने आँसू रोक पाई। भागी वहाँ से। शेखू के घर गई। घर बंद। वह तट की ओर भागी। सूर्य ढलान पर था। ज्यों-ज्यों तट की दूरी घटती जाती, जी दूने वेग से उछाल मारता।

गिरते-गिराते मंतव्य तक पहुँची और पहुँचते ही बिना दम लिए पुकार उठी 'शेखू... '

शेखू ने वैसे ही बैठे-बैठे हाथ बढ़ा कर उसका हाथ थाम लिया 'आ गईं कंचो... ।' वहीं, उसी से लग कर बैठ गई।

'कैसी हो कंचो... '

'जैसे तुम हो... '

'और माँ... ?'

'जैसी मैं हूँ... ' वह हँस पड़ा।

'... '

'कंचो, बड़े समय से तट सूना पड़ा था। सोचता था, इन सन्नाटों की भरपाई कब हो पाएगी... कैसे हो पाएगी... ?'

'सन्नाटों की भरपाई सन्नाटे करेंगे शेखू... '

'कैसे?'

'ऐसे ... ' कहते हुए कंचो की तर्जनी नदी में उतरते, गडमड होते सुर्ख सूर्य की ओर उठ गई।

वह हँस दिया

'सच... प्रायः ब्लैंक्स ही ब्लैंक्स को भर देते हैं... '

'अच्छा छोड़ो, ये बताओ... तुम मेरे लिए क्या कर सकते हो?'

'प्रिये... मैं आकाश जमीन पर ला सकता हूँ... तुम्हारे लिए चाँद, सूरज, तारे... सब ला सकता हूँ... ' वह यूँ ही सी हँस पड़ी तो वह अनमना गया

'क्यूँ, विश्वास नहीं?... अच्छा, हथेली खोलो... '

शेखू ने उसकी हथेली को अपने हाथ में ले लिया

'हाँ, अब आँखें मूंदो... '

और समीप से ही पत्थर के नन्हे-नन्हे टुकड़े उठा-उठा के एक-एक कर उसकी हथेली पर रखने लगा

'ये लो... चाँद... ये लो... सूरज... ये लो तारे और ये... सारी दुनिया... अब जरा आँख खोलो... हाँ... अब मुट्ठी खोलो।'

कंचो ने मुट्ठी खोली और दोनों हँस पड़े। फिर कंचो एकाएक गंभीर हो गई।

'शेखू ... , मजाक छोड़ो, और आँचल के खूँट को खोला - 'ये लो पाँच सौ रुपए। जा कर जमींदार को दे आओ और ये जरूर कहे आना कि चोर-डाकू-लूटेरा बनने का आदमी को शौक नहीं होता। ये तो परिस्थितियाँ और समय बना देते हैं। लेकिन व्यक्ति को एक बार परख लेना चाहिए, कोई यूँ हीनहीं आत्मा बेच डालता।... '

शेखू कभी पाँच सौ का नोट देख रहा था तो कभी कंचो को। आँखों के बादलों ने उसके होंठ सी दिए थे। बड़ी कठिनाई से वह बोल पाया था 'कंचो ... , क्या ऐसे ही सदैव मेरे स्वभिमान की रक्षा करोगी?'

कंचो ने रोते हुए हाँ में सिर हिला दिया था।

भोर ही कंचो का किवाड़ खड़का तो वह चौक पड़ी 'अरे कौन भला तड़के ही टपक पड़ा' किवाड़ खोले तो चौंक पड़ी, 'श्... शेखू... !' उसने शेखू को नीचे से ऊपर तक देखा। वह कहीं जाने को तैयार लग रहा था।

'कहीं जा रहे हो**... ?**'

'कंचो, तुम मेरे स्वाभिमान की रक्षा तभी कर सकोगी जब मैं खुद भी स्वामिमानी बनूँ, अपने अहं की रक्षा करूँ। मैं पहले इस योग्य तो बन जाऊँ... '

वह काँपते होंठो, भरी आँखों से उसे देखती रही फिर चुपचाप भीतर चली गई। एक थाल में कुछ अनाज, गुण और कुछ सिक्के ले कर लौटी। उसकी नजर उतारी। कंपित हाथों से तिलक किया। रुँधे गले से इतना ही कह पाई - '... शेखू ... अपना ख्याल रखना।'

'तुम भी कंचो**... '**

'जल्दी आना**... '** कंचो का स्वर भीग गया।

'मेरी कंचो... तू भी ना!' स्वयं पर काबू पाते हुए उसने कंचो की हथेली अपनी हथेली में ले ली, पास ही पड़े कुछ एक कंकड़ उठाए और उसकी हथेली पर रखने लगा - 'ये लो चाँद ये लो सूरज, ये सितारे... ये लो दुनिया और... ये लो शेखू... '

अंतिम पंक्तियों कहते-कहते दोनों रो दिए।

शहर गए शेखू को तीन महीने हो गए। अकेलापन कंचो को काटने दौड़ता।

यहाँ-वहाँ बैठ कर समय काट देती। कभी-कभी बहुत जी उलझता तो तट पर जा

कर गुम-सुम बैठी क्षितिज में डूबती-उतराती रहती... मन पूछता - 'अब इस ब्लैंक को कौन भरे, आकाश-पाताल या क्षितिज... '

आँखों में पनीली धूप उतर आती, चेहरा धुआँ हो जाता, अंदर-अंदर चक्रवात घुमड़ने लगते... ।

उसे विश्वास था, शेखू उसका भरम तोड़ेगा नहीं पर जाने कौन सा काँटा उसे चुभ रहा था। वह आहत हो जाती। माँ का स्वास्थ्य फिर बिगड़ने लगा था। समझ नहीं पाती कैसे क्या करे? हार कर सब नियति पर छोड़ देती। दिन निकलते गए, दिन-सप्ताह,

सप्ताह-महीने और महीने साल बन गए। ढाई साल हो गए। अब उसने शेखू के आने की आशा छोड़ दी थी। शहर आने-जानेवालों से भी कोई हाल खबर नहीं मिल पाती। ना वह कुछ कहला पाती। कोई नहीं जान पाता कि वह कहाँ है, कैसा है। तीसरा साल लगते-लगते माँ साथ छोड़ गई। अब सामने एक ही प्रश्न था कि जीवन को कैसे जीने के योग्य बनाया जाए। सारे अपने साथ छोड़ गए थे। ऐसे में शहर में ब्याही उसकी सहेली एक दिन अंगारों की गर्त ले कर आई थी। कंचो से मिलते ही बोली -

'कंचो, अब शेखू की बाट जोहना छोड़ दे उसने कब का ब्याह कर लिया, कुछ एक साल का बच्चा भी है... ' जैसे ध्वस्त हो गई वह। किंतु ना आँखों से समंदर बहे, ना होंठों पर पीड़ा जागी। मूर्तिवत बैठी रही। सहेली चली गई। वह यन्त्रवत उठी। सरयू के तट पर पहुँची और फूट-फूट कर रो पड़ी। इस दरम्यान कई बार मामा जी आए उसे लिवाने, पर वह यह सोच कर मना कर गई कि शेखू भी कभी भी आ सकता है। और उसे ना पा कर परेशान होगा। व्यथित होगा। किंतु अब गाँव में बने रहने का कोई मतलब नहीं था। वह स्वयं अपनी गठरी लपेट मामा के शहर हो ली।

रास्ते भर वह सोचती रही, शेखू ने तो बड़ा नीचा काम किया। गाँव के सीधे-सादे लोग भी शहर के त्रियाचरित्तर से बच नहीं पाते। कैसा स्वार्थी निकला। मुड़ कर देखा तक नहीं। मामा के वहाँ पहुँची। मामा के बेटे-बेटियों ने हाथों-हाथ लिया। खूब सत्कार किया। लड़कियाँ यही शिकायत करती रहीं'जीजी, पहले क्यूँ नहीं आईं... ?'

एक रोज मंसा के उसने अपनी हमउम्र मामा की बेटी को सारी कहानी कह डाली। तो उसने भी भरे मन से सांत्वना थमा दी थी 'हार ना मानो जीजी, ये ब्याह की बात झूठ भी हो सकती है; शेखू आ भी सकता है।' उसकी ये सांत्वना

कंचो को भीतर तक भिंगो गई थी। मन ही मन सोचा था - 'काश! ... ऐसा हो जाए... शेखू लौट आए... '

इस बीच रणवीर बाबू कितनी ही सिगरेट फूँक चुके थे। जैहन जैसे चौतरफा शिकँजों से कसा जा रहा था। भीतर एक दग्ध-छटपटाहट तड़प-तड़प के रह जाती। उनकी रिपोर्टबुक खाली थी। उनका कलम स्तब्ध था। जेहन शून्य। एक शब्द भी ना दे पाया। ना उन्हें अपनी सुध थी, ना कंचन बाई को कुछ और सूझ पड़ रहा था। वह अपनी ही रौ में अतीत के तीव्र प्रवाह में बह चली थीं। भीतर की पीड़ा चेहरे पर मलाल बन कर उभर रही थी। जाने कैसे खुद को सँभाले हुए थीं। बड़े ही हताश और पीड़ामय स्वर में उन्होंने अंतिम पंक्ति जोड़ी थी - 'मैं... प्रतीक्षा करती रही... पर, उसे ना आना था वह ना आया।'

'आया तो था कंचो... तुम ही नहीं मिलीं, शायद उसकी प्रतीक्षा ही नहीं कर

सकीं... ' एक भर्राया स्वर काँप गया।

'क्... क्या... तु... तु... तुम्म... ' हठात् कंचन बाई के हाथों ने पर्दा सरका

दिया।

'... तुम... '

'हाँ ... मैं, शिखर रणवीर सिंह... तुम्हारा शेखू ... ' कराहते हुए आखिर रणवीर बाबू का अंतस फूट पड़ा।

कंचन बाई बिल्कुल उनके सामने खड़ी थीं और बड़े तोष से उन्हें देखे जा रही थीं। वह सिर झुकाए अब भी सब-कुछ छूट जाने की स्थिति लिए बैठे थे। एक मारक अनुभूति उनमें टीस उतार गई जैसे।

कंचन बाई उनके सामने एक आर्द्र भाव लिए झुकीं -

'नहीं शेखू ... वो प्रतीक्षा तुमने मुझे दी ही कहाँ जिसे मैं चिरआयु, अपने सीने से लगाए बैठी रह जाती।... सोचो... जिस पथ पर कोई पलकें बिछाए बैठा है, कोई तीसरा आ के वो पथ ही खोद जाए तो ... तब... तब... क्या करें वो आँखें... ?'

'मेरे ब्याह की बात तुमसे जिसने कही गलत थी। मैं तो शहर पहुँचते ही काम से लग गया था। एक बड़े सेठ के यहाँ नौकरी मिल गई थी। पर हफ्ते भर में ही मेरा शत्रु, मेरा दुर्भाग्य वहाँ भी आ पहुँचा, सेठ के ही कुछ संबंधियों ने उसकी हत्या कर दी। मैं संसार के छल-छद्म से अनजान सीधा-साधा सरल व्यक्ति। जबरन दोष मढ़ दिया गया। मेरी निर्दोषता की गवाही कौन देता... ? सिवाए मेरे आँसुओं के। पर आँसुओं की भाषा कौन समझता है। मैं फर्जी मुकदमा चलने के बाद जेल भेज दिया गया। बीच-बीच में कैदियों की दूसरे-तीसरे शहरों में बदली होती रहती। और इस अदला-बदली में मैं जाने कहाँ-कहाँ भटकता रहा। कुछ भी समझ नहीं आता, कैसे तुम्हें सूचित करूँ। प्रयास किया भी किंतु असफल रहा। छूटा तो सीधा गाँव पहुँचा।... '

कहते-कहते रणवीर बाबू की निगाहें कंचन बाई के चेहरे पर 'कंचो' तलाशने लगी थी। कंचन बाई जड़ बनी बैठी थीं। दोनों चेहरे लत-फथ थे। दिलों की पीड़ा जाने कब से जमी पड़ी थी जो थोड़े से स्पर्श से ही बह चली थी। स्वयं को सँभालते हुए वह आगे बोले -

'पागलों की तरह घूमता रहा, मगर वहाँ ना तुम्हारा घर बचा था ना मेरा... सरयू के तट पर गया, वहाँ, जहाँ हमारे नाम लिखे रहते थे। वे मिट चुके थे। अब वहाँ धोबी के पाट थे या चरवाहों और पशुओं की रेलमपेल... । ना तुम कहीं मिलीं, ना तुम्हारा कोई चिन्ह ही... । तुम्हारे मामा के वहाँ गया पता चला, तुम वहाँ से जा चुकी हो।'

'हाँ, मैं बगैर बताए इधर भाग आई थी।'

'पर तुम यहाँ आई ही क्यूँ... तुम तो जानती हो इस जगह से मुझे कितनी... '

'घृणा थी... ' वह बात काटती बोली

'हाँ... शिखर... मात्र यही एक वजह थी कि मैं यहाँ आई। तुमने मुझसे धोखा किया ये विचार मुझे घोंटता रहता। मैं प्रतिशोध की आग में जल रही थी। तुमसे प्रतिशोध लेने का इससे बेहतर उपाय क्या था कि जिस चीज से तुम्हें घृणा हो, तुम्हारी प्रिय वस्तु को उसी में झोंक दिया जाए मैंने झोंक दिया शिखर ... ' कंचन बाई का गला रुँध गया।

'शिखर नहीं, शेखू कहो कंचो, कुछ देर के लिए मुझे मेरा खोया हुआ पल लौटा दो। इस, इसी एक संबोधन के लिए पल-पल मरा हूँ... पल-पल जिया हूँ... '

'सच कहूँ तो मुर्दा जीवन जीते-जीते आज युगों बाद कंचो भी जी उठी है। ज्यों पत्थर के बुत में प्राण पड़ गए हों। अब बाकी की उम्र इसी, एक सार्थक पल के सहारे गुजारनेवाली हूँ... । बहुत दिनों बाद आज रूह लौट आई है... "

'तो तुमने प्रतिशोध ले लिया... '

'हाँ प्रतिशोध... तुम्हारे प्रतिशोध ने शेखू मुझे यहाँ तक पहुँचाया। तुम्हारे ब्याह की बात सुन मैं पगला गई थी। मेरे आप ने बड़ा धिक्कारा मुझे कि जिसकी प्रतीक्षा सँजोए बैठी रही वह तो ब्याह रचा के जीवन का आनंद ले रहा है। और मैं... यानि मुझसे छल... अपने प्रेम से छल... अपने आप से छल... । रोने-पीटने के बजाय तुमसे बदला लेने की ठान ली। सोंचा, जिसे तुम अपना सर्वस्व मानते थे उसे भी मैं उसी आग में फेंक दूँगी जिसकी आग तुम्हें व तुम्हारे परिवार को उम्र भर जलाती रही। जिसके अस्तित्व पर तुम्हारा एकधिकार था उसे मैंने चिंदी-चिंदी कर दरिंदों में बाँट दिया। इस प्रतिशोध के बाद मैं बहुत संतुष्ट थी... किंतु आज... '

'तुम अपने प्रतिशोध में सफल हुईं कंचो। अभी जिस मृत्यु से मैं गुजर रहा हूँ उसकी चटख पीड़ा का अनुमान तुम नहीं लगा सकतीं... '

कंचन बाई सिर पकड़ कर बैठ गईं - 'नहीं शेखू... नहीं, हे ईश्वर ... ये कैसी प्रतिशोध की ज्वाला मैंने भीतर भड़का ली थी कि अंधी ही हो गई। जिसे प्रेम किया उसे ही जला डाला।'

'विद्रोह तो तुम्हारा स्वभाव रहा है कंचो... तुमने अन्याय सहा ही कब... यही

तुम्हारा गुण था कंचो... ये और बात है कि इसी खूबी ने तुम्हें परास्त किया और मुझे

तबाह... '

कंचन बाई बराबर सिसक रही थीं, और रणवीर बाबू का खून जमने लगा था। लगा, शरीर वहीं भरभरा कर गिर जाएगा। पास रखे गिलास से पानी पिया और हाँफने लगे। कंचन बाई ने उनका हाथ पकड़ा और एक दूसरे छोटे कमरे की तरफ खींच ले गईं। वह यंत्रावत उठ गए थे और कंचन बाई के पीछे-पीछे चले गए थे। इस एक पल में उनके भीतर एक अव्यक्त पीड़ा तैर गई थी। अतीत एक बार पुनः उनके सामने था। कहीं आकाश से एक स्वर छनछना गया था -

'शेखू... आओ तो... आओ... तो... तुम्हें आम के बौर दिखाऊँ।'

एक मीठा दर्द अंदर फैल गया। जी चाहा था पहले की तरह ही उसकी चोटी हाथ में लपेट के कह दें - 'उन बौरों की सुगंध तो तेरे बोलों में भी है कंचो... '

कि एकदम से तंद्रा टूटी। कंचन बाई उनका हाथ हिला रही थीं। इस समय वह कंचन बाई के साथ पूजाग्रह में खड़े थे। कंचन बाई ने श्रीकृष्ण के कदमों में रखे कुछ पत्थरों के छोटे-छोटे टुकड़े उठाए... और रणवीर बाबू की हथेली खोलती हुई बोलीं -

'शेखू... शहर जाते समय तुमने मुझे जो दौलत दी थी आज तक उसे सँभाल

कर रखा है। इन्हें दिल से लगाए हर तूफान झेल गई। जानते हो क्यूँ?' रणवीर बाबू बुत बने देखते रहे। कंचन बाई आँखों में आँखें डाल कर बोलीं -

'क्योंकि ये मेरी दौलत थीं। मेरा संसार थीं। और मेरे जीने का सहारा भी।

किंतु मेरे बाद इनके होने का मर्म कोई क्या जानेगा... । आज ये बोझ भी उतार ही

दूँ।' और एक-एक करके वे टुकड़े उनकी हाथेली पर रखने लगीं -

'ये लो... तुम्हारे चाँद... तुम्हारे... सूरज ... सितारे... ये लो ... तुम्हारी दुनिया... और ये ... तुम भी... '

आवाज का कंपन सिसकियों में तब्दील होने लगा। रणवीर बाबू के चेहरे

पर कितनी ही अश्रु रेखाएँ दौड़ गई थीं।

'शेखू ... , तुम्हारा मुझपे ये कर्ज था... '

'एक और बात... , अब यहाँ मत आना, तुम्हें मेरी सौगंध... यहाँ अच्छे लोग नहीं आते... '

रणवीर बाबू ने ईंटों के टुकड़ों को मुट्ठियों में भींच लिया और तेजी से नीचे उतर गए। दालान में होते हुए बाहर निकल गए। भवन से बाहर निकलते ही व्यंग्य बाणों से बिंधने लगे थे, कई तरफ से स्वर लहराया -